प्रकाशित: 20 जुलाई 2017 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित -

कहानी दो हामिदों की

सतीश पेडणेकर

कुछ बरस पहले राज्यसभा चैनल के एक कार्यक्रम में जाने का मौका मिला, जहां अन्य साहित्य के साथ निवर्तमान उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी के भाषणों की एक पुस्तक भी दी गई थी। पुस्तक देखकर यह धारणा बनी कि हमारे उपराष्ट्रपति पढ़े-लिखे और विद्वान व्यक्ति हैं। वाम और सेकुलर राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि होने के साथ वे प्रगतिशील भी हैं। मुझे लगता था कि कार्यकाल पूरा होने पर वे कुछ प्रगतिशील बातें बोलेंगे, मगर निराशा ही हाथ लगी। ऐसे ज्यादातर लोगों से निराशा ही मिलती है। अन्य प्रगतिशीलों की तरह वे भी 'राग असहिष्णुता' ही अलापते रहे। दस साल तक उपराष्ट्रपति रहे, मगर मन की बात कार्यकाल के आखिरी दिनों में भाजपा सरकार बनने के तीन साल बाद बोले। उन्होंने कहा कि देश में मुस्लिम, दलित और अल्पसंख्यक असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। दरअसल, कहने को उन्होंने दलित और बाकी अल्पसंख्यकों की बात की, मगर उनकी असली बात यह थी कि ''मुस्लिम असुरक्षित महसूस कर रहे हैं।'' उनसे ऐसे बयान की उम्मीद नहीं थी। वे पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी और चिंतक हैं। लिहाजा, मैं उनसे मुस्लिमों को कट्टरवाद से उबर कर सेकुलर देश के नागरिक बनने की अपील की उम्मीद कर रहा था। लेकिन सुनने को मिला मुस्लिम राजनीति का सदियों से चला आ रहा नारा, ''मुस्लिमों का उत्पीड़न हो रहा है। इस्लाम खतरे में है।'' तब लगा कि हामिद अंसारी

के पास अपनी सोच है ही नहीं। ऐसा कहकर वे सदियों से चल रही अलगाववादी मुस्लिम राजनीति को ही पोस रहे हैं। हाल के वर्षों में ऐसा तो कुछ भी नहीं हुआ कि ऐसा कठोर बयान दिया जाए, जिससे सारा देश कलंकित हो। पर आजकल ऐसे बयान देना राजनीतिक फैशन बन गया है और अंसारी भी इसके शिकार हो गए।

वैसे अंसारी को जानने वाले कहते हैं कि उनके भाषण में मुस्लिम राजनीति की गूंज सुनाई देना स्वाभाविक था, क्योंकि उनके पूर्व के कुछ रंग-ढंग वैसे ही रहे हैं। उनके परिवार के करीब 100 साल के इतिहास में कांग्रेस और कभी खिलाफत आंदोलन के साथ भी काफी सक्रियता रही है। अंसारी का जीवन भी 'करियर राजनयिक' का रहा। उनके कार्यकाल का अधिकांश हिस्सा पश्चिम एशिया के मुस्लिम देशों से जुड़ा रहा है। वे उसी माहौल में, उसी सोच में, उसी चर्चा में, वैसे ही लोगों के बीच रहे। बाद में वे अल्पसंख्यक आयोग और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से जुड़े रहे। कुल मिलाकर उनसे मुस्लिम समस्या पर बेबाक और निष्पक्ष विश्लेषण की उम्मीद बेकार थी। तब मैं अपने पसंदीदा मराठी लेखक हामिद के नामराशि हामिद दलवई के बारे में सोचने लगा- काश! हामिद अंसारी भी हामिद दलवई की तरह मुसलमानों के बारे में बेबाकी और निष्पक्षता से सोच पाते तो मुसलमानों का वर्तमान और भविष्य सुधर जाता। हामिद अंसारी और हामिद दलवई दो बिल्कुल अलग सिरे हैं।

अंसारी मुस्लिमों और इस्लाम के बारे में परंपरागत धारणा का पोषण करते हैं तो दलवई बेबाक सोच की मिसाल हैं। अंसारी चंद अखबारी घटनाओं के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंच गए कि 'मुसलमान असुरक्षित महसूस कर रहे हैं।' किसी एक समाज की असुरक्षा हाल की चंद घटनाओं के आधार पर तय नहीं होती। उसके लिए इतिहास और पृष्ठभूमि को

खंगालना पड़ेगा। कई बार जिसे असुरक्षित कहा जाता है वह और कुछ नहीं, अपने राजनीतिक वर्चस्व को स्थापित करने के लिए अपनाई गई मुद्रा होती है। कई बार किसी समाज में गहरे सुधार की कोशिशों को कोई समाज अपने ऊपर हमले के रूप में लेता है। उसे उत्पीड़न मानता है। कभी उस समाज का अभिजात्य वर्ग अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए यह रवैया अपनाता है। इसलिए हमें समझना होगा कि यह असुरक्षा कितनी ओढ़ी हुई है और कितनी वास्तविक।

अंसारी मुस्लिम असुरक्षा की बात करते हैं, मगर भारत दुनिया का सबसे अधिक मुस्लिम आबादी वाला पंथनिरपेक्ष देश है। भारत में न केवल मुसलमानों की आबादी बढ़ी है, बल्कि आबादी का प्रतिशत भी खासा बढ़ा है। यह इस बात का संकेत है कि मुस्लिमों की आबादी पर पाबंदी लगाने या नियंत्रित करने की कोशिश नहीं हुई है। फिर भी मुस्लिम खुद को असुरक्षित और उत्पीड़न का शिकार मानते हैं तो यह भावना वास्तविक नहीं है। असल में हिन्दू समाज को मुस्लिमों की बढ़ती आबादी से चिंतित होना चाहिए था। इसके लिए सरकार पर दबाव डालना चाहिए था, क्योंकि उसके साथ विभाजन की यादें जुड़ी हुई हैं। यह अपने में मजेदार बात है कि इस्लाम हमलावर बनकर दुनिया के कई देशों और भारत में भी आया और फैला, मगर जब उसके प्रतिरोध की कोशिश हुई तो मुसलमानों ने कहा कि इस्लाम खतरे में है। यानी स्थानीय लोग आक्रमण का मुकाबला भी न करें। इस्लाम के अध्येता के तौर पर हामिद अंसारी इसे अच्छी तरह जानते होंगे। फिर भी असुरक्षा का मुद्दा उठा रहे हैं। यह एक घिसा-पिटा मुद्दा है, क्योंकि मुस्लिम राजनीति ब्रिटिश काल से अब तक 'उत्पीड़न का शिकार' होने की बात करती रही है। असुरक्षा का मुद्दा इसलिए उठाया जा रहा है, क्योंकि इस्लामी कानून और तीन तलाक निशाने पर हैं। अंसारी

जैसे प्रगतिशील लोग जानते होंगे कि यह देश और मुस्लिम समाज में बुनियादी सुधार की कोशिश है। हमारा संविधान भी समान नागरिक संहिता को अपना लक्ष्य मानता है, जिसकी जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही है। मगर कई बार सुधार की कोशिश को गलत तरीके से देखा जाता है। क्या मुस्लिम इसलिए असुरक्षित हो गए, क्योंकि देश में समान नागरिक संहिता की बात की जा रही है?

लोकतांत्रिक और पंथनिरपेक्ष देश में एक कानून की उम्मीद की जाती है। इस मामले में मुस्लिमों का रवैया बड़ा अजीब है। एक तरफ वे कहते हैं कि मुस्लिम पर्सनल लॉ 'अल्लाह का कानून' है। इनसान इसमें कोई बदलाव नहीं कर सकता। दूसरी ओर वे नागरिक कानून की तरफदारी कर रहे हैं, लेकिन आपराधिक कानून पर चुप्पी साध लेते हैं। इस तरह वे अल्लाह के कानून में काट-छांट कर लेते हैं। उन्हें कभी यह याद नहीं आता कि अगर यह हमला है तो कई दशक पहले हिंदुओं पर भी ऐसा हमला हो चुका है।

महाराष्ट्र के मुस्लिम समाज सुधारक और डॉ. लोहिया के अनुयायी हामिद दलवई कहते थे कि यदि मुस्लिमों को पर्सनल लॉ लागू करने की इजाजत दी जाती है तो हिंदुओं को भी मनुस्मृति लागू करने की इजाजत मिलनी चाहिए। यदि देश में एक कानून बनाने की कोशिश होती है तो उसे किसी समाज विशेष पर हमले की श्रेणी में रखना कहां तक उचित है? यदि हिन्दू कोड बिल को हिन्दू समाज पर हमला नहीं माना जा सकता तो मुस्लिम पर्सनल लॉ को खत्म करने को मुस्लिम समाज पर हमला कैसे माना जाए? यही रवैया रहा तो देश में कभी सामाजिक सुधार हो ही नहीं पाएगा। अंसारी जैसे प्रगतिशील लोगों को मुसलमानों को यह नजरिया समझाना चाहिए था, पर वे उनकी कथित असुरक्षा की भावना को ही सहलाते रहे।

यह भी कहा जा रहा है कि स्त्री-पुरुष समता के नाम पर तीन तलाक के विरोध से मुस्लिम सुरक्षित महसूस कर रहे हैं। उन्हें लगता है कि स्त्री-पुरुष में जो कानूनी असमानता चल रही है वह सही है। यह नहीं चली तो इस्लाम और मुसलमान खतरे में पड़ जाएंगे। ये घटनाएं इस ओर इंगित करती हैं कि देश में अधिकांश मुस्लिम नेता लीक पीटने वाले हैं। प्रबुद्ध और विवेकसंपन्न मुस्लिम नेताओं का अभाव है, जो मुसलमानों को जागरूक कर इस्लाम को आधुनिक रूप दे सकें। दुखद बात है कि अंसारी जैसे नेता ने भी निराश किया।

दलवई जीवनभर समान नागरिक संहिता की पुरजोर वकालत करते रहे। 18 अप्रैल, 1966 को उन्होंने समान नागरिक कानून लागू करने की मांग को लेकर मुंबई मोर्चा भी निकाला था। वे मुस्लिम समाज में स्त्री-पुरुष समानता की मुखर आवाज थे। वे अपने हिन्दू दोस्तों से कहते थे कि आप मुसलमानों से स्पष्ट कहिए कि उन्हें समान नागरिकता, समान अधिकार एवं लोकतांत्रिक स्वतंत्रता मिली है, इसलिए उन्हें समान नागरिक कानून स्वीकार करना चाहिए। अगर वे तैयार नहीं हैं तो उन्हें दूसरे दर्जे की नागरिकता दी जानी चाहिए। मुसलमानों को समान नागरिक कानून या दूसरे दर्जे की नागरिकता में से एक विकल्प चुनने की छूट मिलनी चाहिए। दलवई ऐसे विरले विचारक थे, जिन्होंने इस्लाम और मुस्लिम मानसिकता का तटस्थ होकर अध्ययन किया और उसे बुद्धि, तर्क, पंथनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक मूल्यों की कसौटी पर कसने की कोशिश की और इस आधार पर मुस्लिम समाज को बदलने का अभियान चलाया। वे आधुनिकता व उदारवाद के घोर समर्थक थे और उनकी कोशिश थी कि मुस्लिम समाज भारत के सेकुलर और बहुलतावादी गणराज्य में अपनी जगह बनाए। मुसलमानों की सेकुलरिज्म के प्रति आस्था को लेकर दलवई आशंकित थे।

उनका मानना था कि हिन्दू और पश्चिमी देश जिस रूप में सेकुलरिज्म को स्वीकार हैं, मुसलमान उस रूप में उसे स्वीकार नहीं करते। मुसलमानों ने इसका सुविधाजनक अर्थ निकाला- उनके मजहबी कानून में दखल नहीं दिया जाएगा, जो उनके हिसाब से अपरिवर्तनीय है। यदि सरकार को उनके इस अर्थ को स्वीकार करना है तो हिंदुओं को मनुस्मृति के मुताबिक सामाजिक आचरण की इजाजत भी देनी चाहिए। मगर सत्ताधारियों नें पंथनिरपेक्षता का दोहरा अर्थ निकाला है- मुसलमानों के मामले में हस्तक्षेप नहीं करना और हिंदुओं के मामले में हस्तक्षेप करके सुधार कराना। भारतीय राजनीति में मुस्लिम सांप्रदायिकता के बढ़ते प्रभाव के बारे में उन्होंने बार-बार रेखांकित किया कि केवल सत्तारूढ़ दल ही नहीं, गांधीवादी, समाजवादी और कम्युनिस्ट आदि मुस्लिम पूर्वाग्रहों को ही तुष्ट करते रहे। उन्होंने कभी इस्लाम के वास्तविक चरित्र को समझने की कोशिश नहीं की। मसलन गांधीवादी कहते हैं कि सारे पंथ समान हैं। इस्लाम की शिक्षाएं उदात्त हैं, मगर उनकी ये बातें काल्पनिक और तथ्यहीन हैं। इस्लाम अपने को सच्चा और सर्वश्रेष्ठ, जबकि बाकी मत-पंथों को झूठा मानता है। इसलिए कोई 'जब मुसलमान की तरह मरता है तो ही उसे स्वर्ग प्राप्त होता है।' यह सोच सर्वधर्म समभाव की सोच के साथ मेल नहीं खाती। वास्तव में मुस्लिम समाज से सर्वधर्म समभाव की सारी आशाएं ऐसी हास्यास्पद सोच पर आधारित हैं। समाज सुधार की पहली शर्त होती है समाज का निर्मम आत्मालोचन। यह काम दलवई ने बखूबी किया, पर अंसारी में वह जज्बा नजर नहीं आया।